(पीएचडी उपाधि हेतु शोध-पूर्व-प्रस्तुति)

आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन

(ADIVASI JIVAN KENDRIT HINDI UPANYASON KA ALOCHNATMAK ADHYAYAN)

(CRITICAL STUDIES OF TRIBAL LIFE CENTRIC HINDI NOVELS)

PRE-SUBMISSION SEMINAR PAPER

(सेमिनार प्रपत्र)

SESSION: 2017-2022

Registration No.: R-17RS01270086, 09/07/2018

17.12.21

Nidhi kumari Gupta

शोध निर्देशिका

डॉ. मेरी हांसदा

सहायक प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

शोधार्थी

निधि कुमारी गुप्ता

पीएचडी शोधार्थी

हिन्दी विभाग

PRESIDENCY UNIVERSITY
KOLKATA

प्रेसिडेंसी विश्वविद्यालय

86/1, कॉलेज स्ट्रीट

कोलकाता - 700073

<u>आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन</u>

अध्याय विन्यास (Chapterization):

भूमिका

1. प्रथम अध्याय : आदिवासी साहित्य : अवधारणा, स्वरूप एवं परिचय
    - i. आदिवासी की अवधारणा
    - ii. आदिवासी साहित्य का स्वरूप
    - iii. आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों का परिचय
2. द्वितीय अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यास : भूमंडलीकरण और विकास की अवधारणा
    - i. विकास की अवधारणा
    - ii. विकास से संबंधित योजनाएँ: आर्थिक एवं शैक्षिक
    - iii. आदिवासी जीवन के संदर्भ में विकास
    - iv. विकास की व्यवहारिक विसंगतियाँ
3. तृतीय अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में निहित सामाजिक जीवन
    - i. सामाजिक अस्मिता
    - ii. स्त्रियों की स्थिति
    - iii. सामाजिक संक्रमण और प्रभाव
    - iv. सामाजिक मूल्य
4. चतुर्थ अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित राजनैतिक जीवन
    - i. समाज में स्वशासन की परिकल्पना
    - ii. क्षेत्रीय नेतृत्व का प्रश्न
    - iii. क्षेत्रीय राजनीति बनाम राष्ट्रीय राजनीति

5. पंचम अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में निहित धार्मिक जीवन

i. धार्मिक मान्यताएँ

ii. धर्म का समाज में हस्तक्षेप

iii. धर्मांतरण के कारण और उसका प्रभाव

6. षष्ठ अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक जीवन

i. आदिवासी समाज की मुख्य संस्कृति

ii. संस्कृति और प्रकृति का अंतःसंबंध

iii. सांस्कृतिक परिवर्तन : कारण और परिणाम

7. सप्तम अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा और शिल्प का विवेचन

उपसंहार

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रंथ

आधार ग्रंथ

सहायक ग्रंथ

पत्र पत्रिकाएँ

वेबलिंक

<u>शोध-सारांश</u>

साहित्य की कई विधाएँ प्रचलित हैं जिनमें कथा साहित्य सर्वाधिक लोकप्रिय और जनग्राह्य रहा है। कथा साहित्य में न केवल मानव मन को छू लेने की अद्भुत शक्ति होती है, बल्कि आत्मचेतना का विस्तार भी होता है। आदिवासी उपन्यास पर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि आदिवासी जीवन को केंद्र में रखकर कई उपन्यास लिखे गए और लिखे जा रहे हैं। यद्यपि उस संख्या में नहीं जिसकी अपेक्षा रखी जाती है, फिर भी आदिवासी और गैर आदिवासी लेखकों के सफल प्रयासों से हिन्दी साहित्य जगत में आदिवासी उपन्यासों ने अपना एक अलग स्थान निर्मित किया है। आज के आदिवासी साहित्य का जो स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, वह लिखित रूप में है जिसका आधार आदिवासियों का पुरखौती साहित्य रहा है। किसी भी साहित्यिक आंदोलन के उद्भव और विकास में परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रसिद्ध लेखक गंगा सहाय मीणा ने समकालीन आदिवासी साहित्य की शुरुआत 1991 के पश्चात् से मानी है जब भारत सरकार की आर्थिक उदारीकरण की नीतियों में तेजी आई। वर्तमान दौर आदिवासी साहित्य की अवधारणा के निर्माण का दौर है। यद्यपि यह पूर्णतः विकसित नहीं हुई है, किन्तु हिन्दी में आदिवासी साहित्य की अवधारणा निर्मित हो रही है। इस शोध में आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों के आधार पर उनके चिंतन के विभिन्न पक्षों को जानने और समझने का प्रयास किया गया है।

इस शोध को अध्ययन की सुविधानुसार कुल सात अध्यायों में विभाजित किया गया है जिसका सार-संक्षेप इस प्रकार है:-

प्रथम अध्याय : आदिवासी साहित्य : अवधारणा, स्वरूप एवं परिचय

इस अध्याय के अंतर्गत आदिवासी शब्द की अवधारणा प्रस्तुत की गई है। साथ ही आदिवासी साहित्य के स्वरूप पर विस्तृत चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों का परिचय इस अध्याय के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया है

i) आदिवासी की अवधारणा: पहले उप-अध्याय के अंतर्गत 'आदिवासी' शब्द की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी के लिए हिन्दी में जनजाति या अनुसूचित जनजाति, वनवासी, गिरिजन, जंगली, बर्बर, लंगोटिया, इत्यादि तथा अंग्रेजी में ट्राइब, प्रिमिटिव ट्राइब, इंडीजेनस, एबोरिजिनल, शेड्यूल्ड ट्राइब आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है जो कहीं न कहीं उन्हें पिछड़ा, शोषित, हीन, असभ्य प्रमाणित करता है। उनकी अपनी अस्मिता, अपना स्वाभिमान है। ये सभी शब्द उनके गौरव और आत्मसम्मान को ऊँचा नहीं उठा सकते हैं। अतः आदिवासी

शब्द सर्वाधिक उपयुक्त और सर्वमान्य है। इससे उनकी भाषा, संस्कृति, पहचान अस्तित्व में आती है।

ii) आदिवासी साहित्य का स्वरूप: पूँजीवादी भूमंडलीकरण के विस्तार के साथ हाशिये का साहित्य मुख्य रूप से केंद्र में आने लगा है जिसमें आदिवासी साहित्य प्रमुख है। बुद्धिजीवियों के चिंतन के केंद्र में आदिवासी साहित्य के आने के कई कारण हैं। आदिवासी साहित्य की मुख्य चिंता आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन, भाषा और संस्कृति की रक्षा से संबंधित है। वास्तव में ये उनके अस्तित्व का प्रश्न भी है। प्रकृति के साथ उनका प्रगाढ़ संबंध रहा है, वे प्रकृति की छत्रछाया में रहते हैं और उसके साथ साहचर्य का संबंध स्थापित करते हुए उसकी रक्षा करते हैं। लेकिन मनुष्य के अतिरिक्त संचय करने की प्रवृत्ति और भौतिक सुख-सुविधाओं की लालसा के कारण प्रकृति का लगातार दोहन हो रहा है जिससे प्रकृति के अस्तित्व का खतरा लगातार बढ़ता जा रहा है। प्रकृति पर खतरा सम्पूर्ण जीव-जगत के अस्तित्व का संकट है जो आदिवासी साहित्य की रचना का बीज बिन्दु है। इस प्रकार आदिवासी साहित्य न सिर्फ मानव जाति बल्कि सम्पूर्ण प्रकृति और जीव-जगत की रक्षा का साहित्य है। गैर आदिवासी विश्व शास्त्र के माध्यम से संचालित होता है और शास्त्र पर पूर्णतया आस्था रखते हुए उसके सिद्धांतों को व्यवहार में लाया जाता है। जबकि आदिवासी विश्व शास्त्र को पूर्णतया नकारता है। वह किसी शास्त्रीय सिद्धांतों का अनुगामी नहीं होता है, वह केवल वही कार्य करता है जिसमें मानवता मजबूत हो। आदिवासी विश्व यदि शास्त्र सम्मत समाज नहीं है तो शास्त्र विरुद्ध समाज भी नहीं है। यह समाज जीवन को गतिशील बनाने वाले तत्वों के साथ अग्रसर होता है। आदिवासी समाज में विभाजन का कोई स्थान नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में लोक और शिष्ट जैसे विभाजन की अपेक्षा आदिवासी साहित्यकार नहीं रखते हैं। आदिवासी साहित्यकार आदिवासी साहित्य के लोक साहित्य को लोक साहित्य न मानकर 'ऑरेचर' माना है। 'ऑरेचर' को हिन्दी में पुरखौती साहित्य के रूप में स्वीकार किया गया है पुरखौती साहित्य अर्थात् पुरखों का साहित्य।

iii) आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों का परिचय: इस उप-अध्याय में आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों का परिचय दिया गया है जिसके अंतर्गत कुछ उपन्यासों की चर्चा की गई है। इस उप-अध्याय में आदिवासी जीवन केन्द्रित मापदण्डों के आधार पर हिन्दी उपन्यासों का विवरण प्रस्तुत किया गया है जिनमें बसंत मालती, चलती पिटारी, कचनार, रथ के पहिये, जंगल के फूल, मौन घाटी, धार, जंगल के गीत, गगन घटा घहरानी, सीता, मौसी, धूणी तपे तीर, छैला सन्दु, काला पादरी, जहाँ बाँस फूलते हैं, अल्मा कबूतरी, जो इतिहास में नहीं है, हूल पहाड़िया, पाँव तले की दूब, समर शेष है, रेड जोन, जंगल जहाँ शुरू होता है,

रुपतिल्ली की कथा, ग्लोबल गाँव के देवता, महाअरण्य में गिद्ध, सहराना, जहाँ खिले हैं रक्त पलाश, माटी माटी अरकाटी, गायब होता देश, खुले गगन के लाल सितारे, मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ इत्यादि। कुछ विद्वानों ने 'बसंत मालती' को प्रथम आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यास माना है। किन्तु यह उपन्यास मात्र बसंत और मालती की प्रेम कथा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसमें आदिवासी जीवन कहीं भी परिलक्षित नहीं होता है। इसी प्रकार आदिवासी जीवन को केंद्र में रखकर अन्य उपन्यासों का विश्लेषण किया गया है।

द्वितीय अध्याय: आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यास : भूमंडलीकरण और विकास की अवधारणा

इस अध्याय के अंतर्गत विकास की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया। साथ ही विकास से संबंधित योजनाओं (आर्थिक एवं शैक्षिक) पर चर्चा की गई है। आदिवासी जीवन के संदर्भ में विकास तथा विकास की व्यवहारिक विसंगतियों पर प्रकाश डाला गया है।

i) विकास की अवधारणा: इस उप-अध्याय के अंतर्गत विकास की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। शोध करने के दौरान विकास के संबंध में दो विरोधी अवधारणा सामने आई। एक की दृष्टि में जिसे विकास कहा जाता है, दूसरे की दृष्टि में वह विस्थापन का दंश है। देश के प्रथम प्रधानमंत्री विकास का अर्थ औद्योगीकरण की उन्नति मानते थे। इसलिए उन्होंने देश की आर्थिक स्थिति में सुधार लोगों के जीवन स्तर में बदलाव और देश की गरीबी तथा अशिक्षा से निजात पाने के लिए विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना की। इन औद्योगिक केन्द्रों के सहारे विकास के नाम पर प्रकृति प्रदत्त जीवन जीने के मूल संसाधनों को बाजार भाव से बेचा जाने लगा। औद्योगीकरण का प्रथम प्रभाव शहरीकरण है। शहर की चकाचौंध रोशनी में पल-बढ़ रही उपभोक्तावादी संस्कृति को विकास का मॉडल मान लिया गया। दूसरी ओर विस्थापन ने खास कर आदिवासी समुदाय की संस्कृति, स्वायत्तता एवं अस्तित्व को ही दफनाने का प्रयास किया है। जमीन से बेदखल होकर वे बेरोजगारी का दंश झेलते सेवा-कार्यों में लगा दिये गए। वे कृषक से नौकर बन गए हैं। आज वे बड़े लोगों का खाना बनाना, कपड़े धोना, पानी पिलाना, चाय बनाना आदि को नौकरी समझने लगे हैं। वास्तव में अद्योगीकरण पर आधारित विकास समाजीकरण के लक्ष्य से कोसों दूर है। अतः मानव मात्र के लिए यह विकास का मॉडल चिंता का विषय है।

ii) विकास से संबंधित योजनाएँ: आर्थिक एवं शैक्षिक: इस उप-अध्याय के अंतर्गत आर्थिक एवं शैक्षिक विकास की योजनाओं की चर्चा की गई है। राज्य एवं राष्ट्रीय प्रशासन ने शिक्षा जगत में करोड़ों रुपए की लागत लगाई, किन्तु वह सब शिक्षा के विकास के स्थान पर

व्यक्तिगत हित पर ही व्यय हुआ। रिश्वत के आधार पर एक ही विद्यालय में पदाधीन शिक्षक को शिक्षा अथवा ज्ञान के विस्तार से कोई सरोकार नहीं होता है। आदिवासी इलाकों में प्राथमिक स्तर की शिक्षा-व्यवस्था लागू की गई, किन्तु इसके आगे की शिक्षा लगभग नदारद है। प्राथमिक स्तर की शिक्षा के आगे की शिक्षा उपलब्ध न होने के कारण बच्चे पढ़ाई छोड़ने के लिये विवश हो जाते हैं। कुछ बच्चे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद नौकरी नहीं पाते हैं जिससे अभिभावक निराश होकर अपने बच्चों को खेती करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं।

8 जुलाई, 1909 को टिस्को कंपनी के लिए भूमि अधिग्रहण कानून 1894 के तहत 18 आदिवासी गाँवों की 3,564.63 एकड़ जमीन का अधिग्रहण करने हेतु टिस्को कंपनी और अंग्रेज़ सरकार के बीच समझौता हुआ, लेकिन आदिवासी रैयतों से नहीं पूछा गया। हेवी इंजीनियरिंग कॉर्पोरेशन, हटिया की स्थापना 1958 को हुई थी। एच.ई.सी. के प्लांट एवं टाउनशिप निर्माण के लिए 23 गाँवों की कुल 7,199.71 एकड़ जमीन का अधिग्रहण किया गया। 1955 को सोवियत संघ एवं भारत के बीच सम्मिलित रूप से बोकारो स्टील प्लांट की विशाल परियोजना की शुरुआत हुई। इसमें बोकारो के 51 गाँवों की 31,287.24 जमीन का अधिग्रहण किया गया।

iii) आदिवासी जीवन के संदर्भ में विकास: इस उप-अध्याय के अंतर्गत आदिवासी जीवन के संदर्भ में विकास की अवधारणा पर प्रकाश डाला गया है। किसी भी देश को समृद्ध बनाने के लिये विकास का होना अत्यंत आवश्यक है। विकास तभी संभव है जब सकारात्मक परिवर्तन लाया जाये अर्थात् देश और मनुष्य की बेहतरी के लिये सकारात्मक परिवर्तन ही विकास है। आमतौर पर विकास का अर्थ सामाजिक-आर्थिक विकास से है जिसको अंतिम लक्ष्य मान लिया जाता है। इसके अंतर्गत उद्योगों की स्थापना, तकनीकी प्रगति, पूँजी में वृद्धि आदि को प्रश्रय दिया जाता है। ये सभी विकास के आधारभूत तत्व हैं और निस्संदेह इसने विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, किन्तु इसे ही वास्तविक विकास मान लेना उचित नहीं है, विकास की अवधारणा इससे भी व्यापक है। आर्थिक विकास अंतिम लक्ष्य नहीं है बल्कि साधारण जन के जीवन स्तर को उठाने का महत्त्वपूर्ण साधन है। वास्तव में विकास का अर्थ है स्व का विकास अर्थात् इच्छा के अनुसार जीवनयापन करना। डॉ. पद्मजा सेन के कथन से इस बात की पुष्टि हो जाती है, “विकास का अर्थ है अपनी इच्छा अनुसार जीवन जी पाना, अपनी सत्ता, अपनी पहचान की सचेतन अभिव्यक्ति, पूर्णतर उपलब्धि। मैं इसे अपना-आप होने की योग्यता कहती हूँ। इस तरह विकास इच्छा है, अपनी तलाश है, अपने स्व को पाने और स्थापित करने का आनंद है जिसका वास्तविक आदर्श अपना-आप होने की योग्यता का विस्तार है, चाहे वह व्यक्ति का हो या समुदाय का।” आदिवासी समुदाय की दृष्टि में भी विकास का यही अर्थ है।

iv) विकास की व्यवहारिक विसंगतियाँ: देश में औद्योगिकीकरण की स्थापना ने शहरीकरण की प्रक्रिया की नींव डाली। आदिवासी बहुल इलाके औद्योगिक विकास से अछूती नहीं रही। सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि आदिवासी क्षेत्र संसाधनों से सघन रहा है जो उद्योगों के कच्चे माल के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी। निजी औद्योगिक कंपनियों के प्रति उदार नीति अपनाते हुए सरकार ने पूंजी निवेश की अनुमति दी। परिणामस्वरूप खदान, हाइड्रो-एलेक्ट्रिक, सिंचाई परियोजना, बांध परियोजना आदि शुरू की गयी है। बांध परियोजना के अंतर्गत कई बांध प्रोजेक्ट आदिवासी क्षेत्रों में स्थापित हुए। किन्तु यह 'विकास का मंदिर' न बनकर 'विनाश का मंदिर' साबित हुआ। आदिवासियों को अपनी ही जमीन से विस्थापित होना पड़ा और अपने सघन वनाच्छादित प्रदेशों से निकलकर पुनर्वास के लिये इधर-उधर भटकना पड़ा। उनकी समस्या मात्र अर्थ से संबंधित नहीं है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्न भी अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। जंगल में कई तरह के अनमोल और मूल्यवान वृक्ष पाए जाते हैं जो दुर्लभ है, ऐसे वृक्ष बांध निर्माण योजना के तहत नष्ट हो रहे हैं। कई बार बांध टूटने की घटनाएँ सामने आई है जिससे जान-माल की अपार क्षति हुई है। ये सारी समस्याएँ विकास की योजनाओं के साथ तालमेल बैठाने में असक्षम रही हैं। एच.ई.सी. ने 23 गाँवों के आदिवासी एवं कुछ पिछड़े तबके के लोगों की जमीन सार्वजनिक हित के नाम पर अधिग्रहण किया लेकिन जमीन का उपयोग नहीं कर पाया। 7,199.71 एकड़ अधिगृहित जमीन में से सिर्फ 4,199.71 एकड़ यानी 58.4 प्रतिशत जमीन का ही उपयोग मूल मकसद के लिए किया एवं 3,000 एकड़ जमीन यानी 41.6 प्रतिशत अधिगृहित जमीन का उपयोग नहीं हुआ।

शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, आर्थिक विकास आदि से संबंधित योजनाओं का आकलन करने से साफ तौर पर साबित हो रहा है कि आजादी के सत्तर वर्षों बाद भी आदिवासी विकास के लक्ष्य से काफी दूर है। एक ओर संवैधानिक सुरक्षा के प्रावधान दूसरी ओर विकास की नीतियां, बड़ी परियोजनाएं, करोड़ों रुपयों की राशि का व्यय इसके बावजूद आदिवासी जनसंख्या में निरंतर आ रही गिरावट गंभीर चिंता का विषय है। हिन्दी के आदिवासी उपन्यासों में विस्तार से इसकी चर्चा मिलती है।

तृतीय अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में निहित सामाजिक जीवन

तृतीय अध्याय में आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में निहित सामाजिक जीवन की चर्चा की गई है। इस अध्याय को चार उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है जिसके अंतर्गत

सामाजिक अस्मिता पर चर्चा की गई है, समाज में स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। आदिवासी समाज जिस संक्रमण की स्थिति से गुजर रहा है उसके प्रभाव पर चर्चा की गई है। आदिवासी समाज का अपना जीवन मूल्य है। उन जीवन मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है।

i) सामाजिक अस्मिता: पहले उप अध्याय के अंतर्गत आदिवासी सामाजिक अस्मिता को प्रस्तुत किया गया है। आदिवासी समाज सामूहिक समाज का ज्वलंत उदाहरण पेश करते हैं। उनका यह दृष्टिकोण मनुष्यता को दृढ़ और शक्तिशाली बनाता है। उन्होंने बाहरी दुनिया से भिन्न अपना एक संसार निर्मित किया है जहाँ सभी सामाजिक नियमों का पालन करते हुए सामूहिक रूप से निवास करते हैं और आनंद से जीवन व्यतीत करते हैं। प्रकृति मानव जीवन के कण-कण में व्याप्त है। प्राकृतिक सुंदरता अनोखी, निराली, आकर्षक और मनमोहक होती है तथा आदिवासी समाज की सुंदरता प्रकृति की ही देन है। प्रकृति इन्हें विरासत में मिली है और ये प्रकृति के संरक्षक रहे हैं। आदिवासी समाज के निर्माण में प्रकृति का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। वास्तव में इनकी नीति विश्व मानवता को बचाने की नीति है, प्रकृति को बचाने की नीति है जो आज के संदर्भ में उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होगा। वस्तुतः आदिवासियों ने इसका कभी निजीकरण नहीं किया।

ii) स्त्रियों की स्थिति: दूसरे उप अध्याय के अंतर्गत स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। आदिवासी समाज समतावादी समाज रहा है जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से देखा जाता था। पुरुष के प्रति जो दृष्टि, जो भाव रखा जाता था, स्त्री के प्रति भी वही रवैया अपनाया जाता था। दोनों की सहभागिता पर दृष्टिपात करते हुए स्त्रियों के प्रति हिंसा एवं घृणा की भावना आदिवासी समाज में विद्यमान नहीं था। आदिवासी समाज स्त्रियों को भी पुरुष के समतुल्य समझता था। स्त्रियों को स्वयं निर्णय लेने की स्वतन्त्रता प्राप्त थी। अंग्रेजी सरकार द्वारा भूमि पर सामूहिक अधिकार समाप्त कर दिये गए और भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार को ज्यादा महत्त्व दिया गया जिसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों के भूमि पर से समस्त अधिकार समाप्त कर दिये गए और पुरुष ही मूल रूप से भूमि का स्वामी माना जाने लगा। आज के संदर्भ में देखा जाए तो स्त्रियों की भूमिका परिवर्तित हो गई है। परिवार के भरण-पोषण का दायित्व स्त्रियों पर मुख्य रूप से है। अब आदिवासी समाज के मन-मस्तिष्क में यह बात बैठा दी गई है कि स्त्रियों पर, उनके अतिरिक्त स्वच्छंदता पर नियंत्रण रखना अनिवार्य है। फलस्वरूप आदिवासी समाज की अपनी बनी-बनाई सामाजिक संरचना नष्ट हो गई और नई पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता और मूल्य ने आदिवासी समाज में जन्म लिया। इसी के तहत आदिवासी समाज विशेषतः स्त्रियाँ हाशिये पर चली गई।

iii) सामाजिक संक्रमण और प्रभाव: तीसरे उप-अध्याय के अंतर्गत सामाजिक संक्रमण और प्रभाव की चर्चा की गई है। जब-जब व्यवस्था बदली है, आदिवासी समाज प्रभावित हुआ है। अंग्रेजों के द्वारा शासन व्यवस्था स्थापित हो जाने के बाद इनके समाज में आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आया। इनके संपर्क में गैर आदिवासी समाज आया और भूमि सम्बन्धी कानून, स्त्रियों से संबन्धित नजरिया, उनकी स्वच्छंदता प्रभावित हुई। सबसे अधिक स्त्रियाँ प्रभावित हुईं क्योंकि अन्य समाज में स्त्रियों को देखने की दृष्टि आदिवासी समाज से भिन्न है। उनकी सामूहिकता नष्ट हुई। पुरुष स्वयं को उच्च मानकर स्त्रियों को दोयम दर्जे का मानने लगे।

iv) सामाजिक मूल्य: चौथे उप अध्याय के अंतर्गत आदिवासी सामाजिक मूल्य पर चर्चा की गयी है। समाज को महत्त्वपूर्ण बनाने में मूल्य का योगदान प्रमुख है। सामाजिक मूल्य वह है जो समाज में रहने वाले लोगों में, उन लोगों के आचरण, व्यवहार में अभिव्यक्त होती है। ये मूल्य समाज में एकता, दृढ़ विश्वास, संगठन, संकल्प, सामाजिक भावनाओं को स्थापित रखता है। समानता आदिवासियों के सामाजिक जीवन मूल्यों में से एक श्रेष्ठतम मूल्य है। आदिवासी के जितने भी समुदाय हैं, उन सभी समुदायों का मुख्य अंग समानता है। आदिवासी सामुदायिकता को बहुत महत्त्व देता है। इनके जीवन में सामुदायिकता उस सेतु की तरह है जो एक-दूसरे को बांधे रखती है। आदिवासी एक परिवार की तरह मिलकर किसी भी कार्य को करते हैं। उदाहरण स्वरूप विवाह संस्कार हो अथवा घर बनाना हो, सब मिलकर सामूहिक रूप से कार्य सम्पन्न करते हैं। श्रम के बिना कोई भी कार्य संभव नहीं है। आदिवासी समाज श्रम को बहुत गंभीर रूप में लेते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही कठिन परिश्रम करते हैं। स्त्रियाँ तो पुरुषों की तुलना में अधिक श्रम करती हैं, घर-बाहर दोनों का कार्य बड़े सुचारु रूप से करती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवासियों का जीवन मूल्य ही उनकी पहचान है, उनका अस्तित्व सामाजिक मूल्य से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है।

चतुर्थ अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित राजनैतिक जीवन

चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित राजनैतिक जीवन की चर्चा की गयी है। इस अध्याय को तीन उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है जिसके अंतर्गत आदिवासी समाज में स्वशासन की परिकल्पना पर चर्चा की गई है। आदिवासी समुदाय में से ऐसा कोई जन प्रतिनिधि उभरकर सामने आता है जिसमें नेतृत्व की अपूर्व क्षमता

होती है। अतः क्षेत्रीय नेतृत्व का प्रश्न तथा क्षेत्रीय राजनीति बनाम राष्ट्रीय राजनीति पर प्रकाश डाला गया है।

i) स्वशासन की परिकल्पना: इसके अंतर्गत स्वशासन की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत एक विशिष्ट क्षेत्र में विशिष्ट राजनैतिक व्यवस्था होती है जिस पर किसी वाह्य जगत का कोई अधिकार नहीं होता है, केवल अपनी स्वायत शासन व्यवस्था कार्य करती है। आदिवासी स्वशासन से तात्पर्य है 'अबुआ दिसुम अबुआ राज' अर्थात् अपना(हमारा) देश, अपना(हमारा) राज। आदिवासी समाज के स्वशासन का मजबूत स्तम्भ है सामूहिकता जिस पर पूरा आदिवासी समाज टीका हुआ है। किन्तु समय की गति के अनुसार आदिवासी स्वशासन की नीति में परिवर्तन आता गया। आदिवासी समाज के अंतर्गत कई समुदाय हैं जैसे - संथाल, हो, खड़िया, मुंडा, कोल्हन आदि और इनकी अपनी परंपरागत स्वशासन प्रणाली रही है। इस उप-अध्याय के अंतर्गत विभिन्न आदिवासी समुदायों की स्वशासन परंपरा की विस्तार से चर्चा की गयी है। प्रत्येक समुदाय की स्वशासन प्रणाली में ये पाँच तत्व पाये जाते हैं-1) सहजीविता,2) सहअस्तित्व,3) समानता,4) सहभागिता,5) सामुदायिकता। अंग्रेजी शासन के आने के पहले तक आदिवासी क्षेत्र में आदिवासियों का ही शासन था, किन्तु अंग्रेजी शासन व्यवस्था के पश्चात् जमींदारी प्रथा का उद्‌भव हुआ जिसने अंग्रेजी शासन की छत्रछाया में रहकर आदिवासियों का भिन्न-भिन्न तरीके से शोषण किया जिसके कारण आदिवासी सचेत हो गए। उन्होंने उन तहसीलदारों को प्रवेश न करने का हरसंभव प्रयास किया। उनका एक ही उद्‌देश्य था अपनी परंपरा को संरक्षित करना। 5वीं-6ठी अनुसूची की अवधारणा ब्रिटिश काल के समय से सन् 1874 में ही निर्मित हो चुकी थी तथा प्रत्येक अधिनियमों में से एक अधिनियम के रूप में अस्तित्व के रूप में उपस्थित था जिसके लिए आदिवासियों को अंग्रेजों से लंबा संघर्ष करना पड़ा था। अपने पैतृक क्षेत्र एवं अपने समुदाय की स्वतन्त्रता, अपने क्षेत्र की शक्ति बनाए रखने के लिए आदिवासियों ने परंपरागत रूप से तीर-धनुष, टाँगी, कुल्हाड़ी से अत्याधुनिक हथियारों से लैस सेना से युद्‌ध किया। अंग्रेजी सत्ता को उनसे समझौता करने के लिए मजबूर होना पड़ा। 1919 और 1935 का इंडिया एक्ट स्वशासन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। आजाद भारत में भी स्वशासन की व्यवस्था कुछ परिवर्तन के साथ बरकरार रही।

ii) क्षेत्रीय नेतृत्व का प्रश्न: तिलका मांझी, सिदो, कान्हू, चाँद, भैरव, सोबरन मांझी, गोविंद गिरि आदि युग द्रष्टा आंदोलनकारियों ने आदिवासी राष्ट्रीयता की भावना और जल, जंगल, जमीन, हासा-भाषा पर मालिकाना हक के सपने लेकर आंदोलन किया था और संघर्ष को एक मुकाम तक पहुंचाया। इन्होंने आदिवासियों की संस्कृति, जीवन दर्शन की रक्षा के लिए

विरोधी शक्तियों से विद्रोह किया। किन्तु आजादी के बाद नेतृत्व का प्रश्न और उसका उद्देश्य नेतृत्वकर्ता की दृष्टि में बदल गया। नेतृत्वकर्ता धड़ल्ले से लूट के खेल में शामिल हो रहा है और आदिवासी भ्रम में जीते हैं कि उनका आदमी राज कर रहा है।

iii) क्षेत्रीय राजनीति बनाम राष्ट्रीय राजनीति: आदिवासी उपन्यासों में आदिवासी क्षेत्र में आदिवासियों और गैर आदिवासी राजनीतिज्ञों के साथ-साथ कार्य करने की प्रणाली को भी दर्शाया गया है। किन्तु राष्ट्र स्तर पर पहुँचते-पहुँचते नेतृत्व करने की अंदरूनी शक्ति ही समाप्त होने लगती है। कारणों का खुलासा करने के दौरान देश की राजनीतिक खोखलापन का पर्दाफाश हुआ है। अर्थात् राजनीतिक शोषण से निजात पाना भी आदिवासी उपन्यासों का उद्देश्य है।

पंचम अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में निहित धार्मिक जीवन

इस अध्याय के अंतर्गत आदिवासी समाज की धार्मिक मान्यताओं एवं धर्म का समाज में हस्तक्षेप पर चर्चा की गई है। आदिवासी समुदाय को अन्य धर्मों में अंतरण करने की प्रक्रिया ने बड़ी तीव्र गति प्राप्त की है। अतः उसके कारणों एवं प्रभावों पर विस्तृत चर्चा की गई है।

i) धार्मिक मान्यताएँ: पहले उप अध्याय के अंतर्गत आदिवासी समाज की धार्मिक मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया। कहा जाता है कि आदिवासियों का अपना कोई धर्म नहीं है, किन्तु यह सत्य नहीं है। उनका अपना धर्म है, लेकिन धर्म की अवधारणा अन्य धर्मों से भिन्न है। इनके यहाँ ईश्वर भगवान अथवा गॉड के रूप में नहीं है। इनके देवता बोंगा कहलाते हैं जो सूर्य, चाँद, तारे, जल, पर्वत आदि हो सकते हैं अर्थात् प्रकृति के समस्त अवयव इनके लिए पूजनीय है। बोंगा अवतारवाद के स्थान पर एक शक्ति के रूप में कार्य करता है जो सर्वथा अन्य धर्मों से भिन्न है। इनकी धार्मिक मान्यता के अनुसार प्रकृति असाधारण है जो उनके जीवन का अभिन्न अंग है तथा उनका मार्ग दर्शन करती है। जाहेरथान या थान आदिवासियों का पवित्र पूज्य स्थल है जहाँ शाल वृक्ष बहुतायत में होते हैं। विवाह हो, चाहे कोई भी शुभ कार्य हो, सबसे पहले वहाँ के देवता को पूजा जाता है। आदिवासी समाज में धार्मिक ग्रंथ का कोई स्थान नहीं है, क्योंकि उनका पुरखा साहित्य इतना समृद्ध और विशाल है कि नैतिक आदर्शों के समस्त वैशिष्ट्य उनमें स्वतः विद्यमान है जहाँ किसी भी प्रकार की धार्मिक कट्टरता का कोई स्थान नहीं है। स्वच्छंद और बंधनमुक्त मान्यताएँ ही सर्वोपरि है।

ii) धर्म का समाज में हस्तक्षेप: दूसरे उप अध्याय के अंतर्गत आदिवासी धर्म का समाज में हस्तक्षेप पर चर्चा की गई है। धर्म और समाज एक दूसरे से संबन्धित होते हैं। समाज का प्रारम्भ ही होता है धर्म से। धर्म के बिना किसी समाज के संबंध में हम विचार ही नहीं कर

सकते हैं। लेकिन आदिवासी समाज में धर्म का हस्तक्षेप उस तरह से नहीं है। आदिवासी धर्म द्वारा संचालित नहीं होता है। किसी मनुष्य को उन्होंने ईश्वर का स्थान नहीं दिया है। आदिवासियों के कई धार्मिक अनुष्ठान होते हैं और उन्हें पूरे हृदय से आनंदपूर्वक मनाते हैं। ये अनुष्ठान उनके जीवन मूल्यों, एकता के रूप में उनके बीच वास करते हैं, उन पर नियंत्रण या हस्तक्षेप नहीं करते हैं। आज के संदर्भ में देखा जाए तो धर्म व्यवसाय का माध्यम बन गया है, आडंबरप्रियता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। आदिवासी समाज में धर्म का संकुचित और जटिल रूप नहीं मिलता है, बल्कि इसमें लचीलापन, सहजता विद्यमान है।

iii) धर्मांतरण के कारण और उसका प्रभाव: धर्म के अंतर्गत धर्मांतरण की बात आती है तो एक धर्म को छोड़कर अन्य धर्म में परिवर्तित होना धर्मांतरण कहलाता है। जब ईसाई मिशनरी भारत आए तो उस समय आदिवासियों के पास न शिक्षा थी, न आर्थिक अवस्था उतनी ठीक थी, हालांकि उत्तर भारत में ईसाई मिशनरी पहले आए। उत्तर भारत में हिन्दू समाज की सत्ता थी। हिन्दू समाज में कई कुरीतियाँ व्याप्त थी जिसके प्रभाव में आदिवासी समाज आ रहा था। हिंदुओं के अंधविश्वास, आडंबर से आदिवासी समाज इतना प्रभावित होने लगा कि बाद में इन्होंने स्वेच्छा से ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। 'माटी माटी अरकाटी' उपन्यास में कुली के रूप में लिये जा रहे असंख्य आदिवासी स्त्री-पुरुष ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। ईसाई धर्म में आने के पश्चात् उन्हें बहुत सम्मान और आदर मिला, ऐसी बात नहीं थी। अंग्रेजों की दृष्टि में वे असभ्य, जंगली, बर्बर पशु थे, मनुष्य नहीं। यद्यपि ईसाई मिशनरियों की मंशा उपनिवेशवादी विचारधारा से ग्रसित थी, किन्तु उन्होंने आदिवासियों से सहानुभूति रखा जिसे आदिवासी देख, सोच और समझ रहे थे।

षष्ठ अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक जीवन

इस अध्याय के अंतर्गत आदिवासी समाज की मुख्य संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही संस्कृति और प्रकृति के अन्तःसंबंध पर चर्चा की गई है। कई कारणों से उनकी संस्कृति में परिवर्तन आ रहा है। अतः उन कारणों एवं परिणामों पर प्रकाश डाला गया है।

i) आदिवासी समाज की मुख्य संस्कृति: संस्कृति जीवन जीने की कला है। हमारे खान-पान, हमारी वेशभूषा, हमारा रहन-सहन तथा हमारी भाषा संस्कृति का अंग है। वास्तव में संस्कृति विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है जो मनुष्य के जीवन जीने के तरीके को विकसित करती है और अंत में जीवन दर्शन बन जाती है। आदिवासियों ने अपनी संस्कृति का निर्माण प्रकृति के संपर्क में ही रहकर किया है।

ii) संस्कृति और प्रकृति का अंतःसंबंध: इस समाज की संस्कृति के साथ प्रकृति रची-बसी हुई है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के जीवन के संस्कार प्रकृति से ही संबंधित है। नामकरण संस्कार, विवाह संस्कार, विवाह-विच्छेद (तलाक), मृत्यु से संबंधित संस्कार, पर्व-त्योहार आदि प्रकृति पर ही आधारित है। मृत्यु पर्यन्त भी ये अपने संबंधियों को अपनी जमीन में दफनाते हैं। कब्र के सिरहाने निशानी के तौर पर पत्थर रख दिया जाता है जो यह सिद्ध करता है कि वह जमीन उस परिवार या व्यक्ति विशेष की जमीन है। एक प्रकार से इस समाज में यही पत्थर उनकी जमीन का प्रमाण पत्र होता है।

iii) सांस्कृतिक परिवर्तन : कारण और परिणाम : पिछले दो सौ वर्षों से या अंग्रेजी राज कायम होने के बाद से भारत के आदिवासी लगातार एक संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं। बाहर से थोपी गयी सामंती प्रणाली, उपनिवेशवाद और पूंजीवाद के लगातार हमलों से आदिवासी समाजों के अंदर गहरी उथल-पुथल पैदा हुई। उनकी पुरानी संस्थाएं टूटी, समाज में बिखराव आया और नए वर्ग कमोबेश पनपे। उन पर ये बाहरी हमले स्वतंत्र भारत में और तेज हो गए। इसके साथ ही पहले ईसाई मिशनरियों के सहयोग और उनके द्वारा कायम स्कूली शिक्षा के प्रभाव से और बाद में संविधान द्वारा दिये गए आरक्षण तथा कुछ अन्य सुविधाओं के प्रभाव से आदिवासी समाज के अंदर एक छोटा सा शिक्षित शहरी मध्यम वर्ग भी विकसित हुआ है। दूसरी ओर राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय पूंजीवाद ने लाखों आदिवासियों को उनकी ज़मीनों से उजाड़कर बेघर-बार कर मजदूरों की स्थिति में ला खड़ा कर दिया है।

उत्तर-पूर्व सीमांत पर बसे नागा, मिजो और ख़ासी आदिवासी समुदाय तथा भारत के अंदर बसे मुंडा, संथाल, गोंड और भील जैसे समुदायों के बीच बड़ा अंतर है। उनके इतिहास में भी और उनकी वर्तमान स्थिति में भी। नागा, मिजो इत्यादि शुरू से ही स्वतंत्र और स्वायत्त रही है और उन पर बाकी भारतीय समाज का प्रभाव नहीं के बराबर पड़ा जबकि मुंडा, संथाल, गोंड इत्यादि समुदाय शेष भारतीय समाज से घिरी रही है और उनके साथ किसी न किसी रूप में एक संवाद भी करती रही है। यही कारण है कि नागा-मिजो समुदाय में अपनी स्वतन्त्रता और अलगाव की भावना का होना स्वाभाविक है जबकि मुंडा, संथाल और गोंड के अंदर अपनी स्वायत्तता का भाव तो है लेकिन नागा-मिजो जैसा अलगाव-बोध नहीं है।

सप्तम अध्याय : आदिवासी जीवन केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों की भाषा और शिल्प का विवेचन

भाषा एक सामाजिक आवश्यकता है जो मानव कार्यकलाप के समन्वय का साधन है। सामाजिक विकास की लंबी यात्रा में भाषा अनुभव, ज्ञान, कला-कौशल और भौतिक जीवन के संकेतों को

समेटते हुए एक स्मृति कोष बन जाती है, जिसकी नींव पर हमारे आचार-विचार, मूल्य-दर्शन और ऐतिहासिक चेतना का निर्माण होता है। अर्थात् भाषा समुदाय के जीवन मूल्यों का सबसे सशक्त प्रतिबिंब होता है। इसलिए एक समाज के जीवन को जब अन्य समाज की भाषा में अभिव्यक्त किया जाता है तो कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। आदिवासी समाज पर साहित्य लिखते समय उनकी मूल सामाजिक प्रवृत्तियों और जीवन मूल्यों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। भाषा की शुद्धता यहाँ मायने नहीं रखती न ही साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के मापदंड पर आदिवासी साहित्य की शिल्प और भाषा को परखना चाहिए। वीर भारत तलवार का कहना है कि "आदिवासी समाज के बारे में लिखना सबके लिए मुमकिन नहीं, क्योंकि वह ऐसा खास समाज है जो ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से हमारी वर्तमान अवस्था से बहुत अलग मंजिल पर है। उसके सामने खड़े सवाल, उनका धर्म, संस्कृति, उनकी भाषा और जीवन निर्वाह की परिस्थितियाँ-सभी कुछ हमारे समाज से बहुत अलग और अनजानी है।" इसी तरह रोहिणी अग्रवाल भी कहती हैं -"बेशक सृजन के समय रचनाकार सृष्टा होता है, लेकिन उसके सृष्टा के भीतर बैठा बोध उसके वर्ग, धर्म, लिंग और वय से निर्देशित प्रभावित होता हुआ उसे जो दृष्टि और संवेदना देता है, वही उसके लेखकीय व्यक्तित्व का सृजन करता है और रचना में प्रतिफलित होता है।" आदिवासी साहित्य मूलतः आदिवासी साहित्यकार और गैर आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लिखा गया है। गैर आदिवासी साहित्यकारों का शिल्प सौन्दर्य अधिक सशक्त और सुंदर है। आदिवासी साहित्यकारों द्वारा लिखित साहित्य की भाषा संरचना, शिल्प-गठन सरल है किन्तु आदिवासियत की रक्षा इसका मूल उद्देश्य है।

निष्कर्ष : आदिवासी जीवन मूल्य एवं आदिवासी संस्कृति पर आधारित साहित्य को आदिवासी साहित्य कहा जाता है। इसके अंतर्गत आदिवासियों एवं गैर आदिवासियों के द्वारा लिखे गये आदिवासी साहित्य का स्थान समान है। विकास से संबन्धित योजनाओं, संवैधानिक सुरक्षा के प्रावधान, बड़ी परियोजनाएँ, करोड़ों रुपयों की राशि का व्यय होने के बावजूद आदिवासी विकास से कोसों दूर हैं। इन नीतियों के कारण आदिवासियों की स्थिति और भी बदतर होती गई। आदिवासी साहित्य में गैर आदिवासी समाज तो है ही, किन्तु आदिवासी समाज कई विशेषताओं के साथ अभिव्यक्त हुआ है। सह-अस्तित्व, सामुदायिकता, स्वशासन, स्त्रियों की अपेक्षाकृत संतोषजनक स्थिति आदि आदिवासी समाज की विशेषताओं को आदिवासी साहित्य के चिंतन के केंद्र में रखा गया है। निश्चित ही हाशिये के इस समाज को रचनाकारों ने प्रेरक के रूप में प्रस्तुत किया है। आदिवासी धर्म द्वारा संचालित नहीं होता है। किसी मनुष्य को उन्होंने ईश्वर का स्थान नहीं दिया है। आदिवासियों के कई धार्मिक अनुष्ठान होते हैं और उन्हें पूरे हृदय से आनंदपूर्वक मनाते हैं। ये अनुष्ठान उनके जीवन मूल्यों, एकता के रूप में उनके बीच वास करते

हैं, उन पर नियंत्रण या हस्तक्षेप नहीं करते हैं। इस समाज की संस्कृति के साथ प्रकृति रची-बसी हुई है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के जीवन के संस्कार प्रकृति से ही संबंधित है।

आधार ग्रंथ :

1. कुमार, विनोद, रेड जोन, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2015
2. कुमार, विनोद, समर शेष है, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, संस्करण: 2005
3. 'तरुण', वाल्टर भेंगरा, लौटते हुए, साहित्य भारती प्रकाशन, रांची, प्रथम संस्करण: 2005
4. तेजिन्दर, काला पादरी, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2002
5. पंकज, अश्विनी कुमार, माटी माटी अरकाटी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण: 2016
6. पुष्पा, मैत्रेयी, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, तीसरी आवृत्ति: 2011
7. मीणा, हरिराम, धूणी तपे तीर, साहित्य उपक्रम, हरियाणा, तृतीय संस्करण: 2014
8. मुंडा, मंगल सिंह, छैला सन्दु, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण: 2004
9. रणेन्द्र, गायब होता देश, पेंगुइन प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण: 2014
10. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पांचवा संस्करण: 2019
11. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, दूसरी आवृत्ति: 2015
12. सिंह, राकेश कुमार, जो इतिहास में नहीं है, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2005
13. सिंह, राकेश कुमार, हूल पहाड़िया, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, संस्करण: प्रथम 2012